

सुभद्रा

—महादेवी वर्मा

लेखिका परिचय

महादेवी वर्मा का जन्म 26 मार्च 1907 को हुआ एवं देहावसान 11 सितम्बर 1987 को हुआ।

महादेवी की मूल पहचान एक छायावादी कवयित्री के रूप में है किन्तु उनका गद्य साहित्य भी लोकप्रियता की बुलन्दियाँ छूता है।

अपने विरह—वेदना के गीतों के कारण महादेवी आधुनिक मीरा के रूप में जानी जाती हैं।

गद्य के क्षेत्र में संस्मरण और रेखाचित्र लिखने में इन्हें लोकप्रियता मिली। इन्होंने अपने संस्मरणों में अपने आस—पास के साधारण से पात्रों को भी अमर बना कर अपनी ममता का परिचय दिया है। इस श्रेणी में घीसा, रामा, लछमा, भक्तिन जैसे अनेक पात्र हैं। इसके साथ ही महादेवी ने अपने समकालीन साहित्यकारों पर भी संस्मरण लिखे हैं।

इनका रचना—संसार व्यापक है, गद्य एवं पद्य दोनों में अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। प्रमुख रचनाएँ हैं —

काव्य—निहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, सप्तपर्णा, प्रथम आयाम, अग्निरेखा ।

गद्य— रेखाचित्र — अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएं

संस्मरण — पथ के साथी, मेरा परिवार, संस्मरण

निबन्ध — श्रृंखला की कड़ियाँ, विवेचनात्मक गद्य, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, संकल्पिता

ललित निबंध — क्षणदा

कहानियाँ — गिल्लू

चुने हुए भाषणों का संकलन — संभाषण

महादेवी को साहित्य सृजन के लिए ज्ञानपीठ एवं पद्मविभूषण जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कारों से नवाजा गया है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संस्मरण में महादेवी वर्मा ने प्रसिद्ध कवयित्री और अपनी बालसखी सुभद्राकुमारी चौहान के सन्दर्भ में अपने बचपन से लेकर मृत्युपर्यन्त स्मृतियों को प्रस्तुत किया है। इन स्मृतियों में सुभद्राकुमारी चौहान के पारिवारिक जीवन से लेकर साहित्यिक जीवन के सभी पक्षों को उभारा है। पाठ में सुभद्रा जी के अविस्मरणीय योगदान का पक्ष भी विशेष रूप से उभारा है।

हमारे शैशवकालीन अतीत और प्रत्यक्ष वर्तमान के बीच में समय—प्रवाह का पाट ज्यों—ज्यों चौड़ा होता जाता है त्यों—त्यों हमारी स्मृति में अनजाने ही एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है । शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक सम्बन्ध गहरा होता है, उनकी रेखाएँ और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुँधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं । पर जिनसे ऐसा सम्बन्ध नहीं होता वे फीके होते—होते इस प्रकार स्मृति से धुल जाते हैं कि दूसरों के स्मरण दिलाने पर भी उनका स्मरण कठिन हो जाता है ।

मेरे अतीत की चित्रशाला में बहिन सुभद्रा से मेरे सख्य का चित्र, पहली कोटि में रखा जा सकता है, क्योंकि इतने वर्षों के उपरांत भी उसकी सब रंग—रेखाएँ अपनी सजीवता में स्पष्ट हैं ।

एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी, एक पाँचवीं कक्षा की विद्यार्थिनी से प्रश्न करती है, 'क्या तुम कविता लिखती हो।' दूसरी ने सिर हिलाकर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हाँ और नहीं तरल हो कर एक हो गए थे । प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति—अस्वीकृति की संधि से खीझ कर कहा, 'तुम्हारी क्लास की लड़कियाँ तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो । दिखाओ अपनी कापी' और उत्तर की प्रतीक्षा में समय नष्ट न कर वह कविता लिखने की अपराधिनी को हाथ पकड़ कर खींचती हुई उसके कमरे में डेस्क के पास ले गई । नित्य व्यवहार में आने वाली गणित की कापी को छिपाना संभव नहीं था, अतः उसके साथ अंकों के बीच में अनधिकार सिकुड़ कर बैठी हुई तुकबन्दियाँ अनायास पकड़ में आ गई । इतना दंड ही पर्याप्त था । पर इससे संतुष्ट न होकर अपराध की अन्वेषिका ने एक हाथ में चित्र—विचित्र कापी थामी और दूसरे में अभियुक्ता की उँगलियाँ कस कर पकड़ीं और वह हर कमरे में जा—जा कर इस अपराध की सार्वजनिक घोषणा करने लगी ।

उस युग में कविता—रचना अपराधों की सूची में थी । कोई तुक जोड़ता है, यह सुनकर ही सुनने वालों के मुख की रेखाएँ इस प्रकार वक्रकुंचित हो जाती थीं मानों उन्हें कोई कटु—तिक्त पेय पीना पड़ा हो ।

ऐसी स्थिति में गणित जैसे गंभीर महत्त्वपूर्ण विषय के लिए निश्चित पृष्ठों पर तुक जोड़ना अक्षम्य अपराध था । इससे बढ़कर कागज का दुरुपयोग और विषय का निरादर और हो ही क्या सकता था । फिर जिस विद्यार्थी की बुद्धि अंकों के बीहड़ वन में पग—पग उलझती है उससे तो गुरु यही आशा रखता है कि वह हर साँस को अंक जोड़ने—घटाने की क्रिया बना रहा होगा । यदि वह सारी धरती को कागज बना कर प्रश्नों को हल करने के प्रयास से नहीं भर सकता तो उसे कम से कम सौ—पचास पृष्ठ, सही न सही तो गलत प्रश्न—उत्तरों से भर लेना चाहिए । तब उसकी भ्रांत बुद्धि को प्रकृतिदत्त मान कर उसे क्षमा दान का पात्र समझा जा सकता है, पर जो तुकबंदी जैसे कार्य से बुद्धि की धार गोंठिल कर रहा है वह तो पूरी शक्ति से दुर्बल होने की मूर्खता करता है, अतः उसके लिए न सहानुभूति का प्रश्न उठता है न क्षमा का ।

मैंने होंठ भींच कर न रोने का जो निश्चय किया वह न टूटा तो न टूटा । अंत में मुझे शक्ति—परीक्षा में उत्तीर्ण देख सुभद्रा जी ने उत्फुल्ल भाव से कहा, 'अच्छा तो लिखती हो । भला सवाल हल करने में एक दो तीन जोड़ लेना कोई बड़ा काम है !' मेरी चोट अभी दुख रही थी, परंतु उनकी सहानुभूति और आत्मीय भाव का परिचय पाकर आँखें सजल हो आईं । 'तुमने सबसे क्यों बताया ?' का सहास उत्तर मिला 'हमें भी तो यह सहना पड़ता है । अच्छा हुआ अब दो साथी हो गए ।'

बहिन सुभद्रा का चित्र बनाना कुछ सहज नहीं है क्योंकि चित्र की साधारण जान पड़ने वाली प्रत्येक रेखा के लिए उनकी भावना की दीप्ति 'संचारिनी दीपशिखेव' बनकर उसे असाधारण कर देती है । एक-एक कर के देखने से कुछ भी विशेष नहीं कहा जाएगा, परंतु सबकी समग्रता में जो उद्भासित होता था, उसे दृष्टि से अधिक हृदय ग्रहण करता था ।

मझोले कद तथा उस समय की कृश देहयष्टि में ऐसा कुछ उग्र या रौद्र नहीं था जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं । कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियां, बड़ी और भावस्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हंसी को जमा कर गढ़े हुए से ओठ और दृढ़ता सूचक ठुड़ी, सब कुछ मिलाकर एक अत्यंत निश्चल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे । पर उस व्यक्तित्व के भीतर जो बिजली का छंद था उसका पता तो तब मिलता था, जब उनके और उनके निश्चित लक्ष्य के भीतर में कोई बाधा आ उपस्थित होती थी । 'मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना' कहने वाली की हंसी निश्चय ही असाधारण थी । माता की गोद में दूध पीता बालक जब अचानक हंस पड़ता है, तब उसकी दूध से धुली हँसी में जैसी निश्चिन्त तृप्ति और सरल विश्वास रहता है, बहुत कुछ वैसा ही भाव सुभद्रा जी की हँसी में मिलता था । वह संक्रामक भी कम नहीं थी क्योंकि दूसरे भी उनके सामने बात करने से अधिक हँसने को महत्व देने लगते थे ।

वे अपने बचपन की एक घटना सुनाती थीं । कृष्ण और गोपियों की कथा सुनकर एक दिन बालिका सुभद्रा ने निश्चय किया कि वह गोपी बन कर ग्वालों के साथ कृष्ण को ढूँढने जाएगी ।

दूसरे दिन वे लकुटी लेकर गायों और ग्वालों के झुंड के साथ कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गईं । गोधूली वेला में चरवाहे और गायें तो घर की ओर लौट गए, पर गोपी बनने की साधवाली बालिका कृष्ण को खोजती ही रह गई । उसके पैरों में कांटे चुभ गए, कंटीली झाड़ियों में कपड़े उलझ कर फट गए, प्यास से कंठ सूख गया और पसीने पर धूल की पर्त जम गई, पर वह धुनवाली बालिका लौटने को प्रस्तुत नहीं हुई । रात होते देख घरवालों ने उन्हें खोजना आरम्भ किया और ग्वालों से पूछते-पूछते अंधेरे करील-वन में उन्हें पाया ।

अपने निश्चित लक्ष्य-पथ पर अडिग रहना और सब-कुछ हंसते-हंसते सहना उनका स्वभावजात गुण था । क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में जब वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थीं, तभी उनका विवाह हुआ और उन्होंने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया । स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए सन्नद्ध सेनानी पति को वे विवाह से पहले देख भी चुकी थीं और उनके विचारों से भी परिचित थीं । उनसे यह छिपा नहीं था कि नव-वधू के रूप में उनका जो प्राप्य है उसे देने का न पति को अवकाश है न लेने का उन्हें । वस्तुतः जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी । और उन्होंने बसाई भी वहीं । पर इस साधना की मर्मव्यथा को वही नारी जान सकती है जिसने अपनी देहली पर खड़े होकर भीतर मंगल चौक पर रखे मंगल कलश, तुलसी चौरे पर जलते हुए घी के दीपक और हर कोने से स्नेहभरी बाँहें फैलाए हुए अपने घर पर दृष्टि डाली हो और फिर बाहर के अंधकार, आँधी और तूफान को तौला हो और तब घर की सुरक्षित सीमा पार कर, उसके सुन्दर मधुर आह्वान की ओर से पीठ फेर कर अंधेरे रास्ते पर काँटों से उलझती चल पड़ी हो । उन्होंने हँसते-हँसते ही बताया था कि जेल जाते समय उन्हें

इतनी अधिक फूल—मालाएँ मिल जाती थीं कि वे उन्हीं का तकिया बना लेती थीं और लेटकर पुष्पशैया के सुख का अनुभव करती थीं ।

एक बार भाई लक्ष्मणसिंह जी ने मुझसे सुभद्राजी की स्नेहभरी शिकायत की, 'इन्होंने मुझसे कभी कुछ नहीं माँगा।' सुभद्रा जी ने अर्थ भरी हँसी में उत्तर दिया था, 'इन्होंने पहले ही दिन मुझसे कुछ मांगने का अधिकार मांग लिया था महादेवी ! यह ऐसे ही होशियार हैं, माँगती तो वचन—भंग का दोष मेरे सर पड़ता, नहीं माँगा तो इनके अहंकार को ठेस लगती है ।'

घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरंभ हुआ था वह अंत तक चलता ही रहा । छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थीं यह सोचकर विस्मय होता है । कारागार में जो संपन्न परिवारों की सत्याग्रही माताएँ थीं, उनके बच्चों के लिए बाहर से न जाने कितना मेवा—मिष्ठान्न आता रहता था । सुभद्रा जी की आर्थिक परिस्थितियों में जेल—जीवन का ए और सी क्लास समान ही था । एक बार जब भूख से रोती बालिका को बहलाने के लिए कुछ नहीं मिल सका तब उन्होंने अरहर दलनेवाली महिला—कैदियों से थोड़ी—सी अरहर की दाल ली और उसे तवे पर भून कर बालिका को खिलाया । घर आने पर भी उनकी दशा द्रोणाचार्य जैसी हो जाती थी, जिन्हें दूध के लिए मचलते हुए बालक अश्वत्थामा को चावल के घोल से सफेद पानी दे कर बहलाना पड़ा था । पर इन परीक्षाओं से उनका मन न कभी हारा न उसने परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए कोई समझौता स्वीकार किया ।

उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रन्थि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठ कर वे कोमल और ओज भरे छंद लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे पाथती थीं । घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थीं, बर्तन मांजती थीं । आँगन लीपने की कला में मेरा भी कुछ प्रवेश था, अतः प्रायः हम दोनों प्रतियोगिता के लिए आँगन के भिन्न—भिन्न छोरों से लीपना आरम्भ करते थे । लीपने में हमें अपने से बड़ा कोई विशेषज्ञ मध्यस्थ नहीं प्राप्त हो सका, अतः प्रतियोगिता का परिणाम सदा अघोषित ही रह गया पर आज मैं स्वीकार करती हूँ कि ऐसे कार्य में एकांत तन्मयता केवल उसी गृहिणी में संभव है जो अपने घर की धरती को समस्त हृदय से चाहती हो और सुभद्रा ऐसी ही गृहिणी थीं । उस छोटे से अधबने घर की छोटी—सी सीमा में उन्होंने क्या नहीं संगृहीत किया । छोटे—बड़े पेड़, रंग—बिरंगे फूलों के पौधों की क्यारियाँ, ऋतु के अनुसार तरकारियाँ, गाय, बच्चे आदि—आदि बड़ी गृहस्थी की सब सज्जा वहाँ विराट दृश्य के छोटे चित्र के समान उपस्थित थी । अपने इस आकार में छोटे साम्राज्य को उन्होंने अपनी ममता के जादू से इतना विशाल बना रखा था कि उसके द्वार पर न कोई अनाहूत रहा और न निराश लौटा । जिन संघर्षों के बीच से उन्हें मार्ग बनाना पड़ा वे किसी भी व्यक्ति को अनुदार और कटु बनाने में समर्थ थे । पर सुभद्रा के भीतर बैठी सृजनशीला नारी जानती थी कि काँटों का स्थान जब चरणों के नीचे रहता है तभी वे टूट कर दूसरों को बेधने की शक्ति खोते हैं । परीक्षाएँ जब मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को क्षत—विक्षत कर डालती हैं तब उनमें उत्तीर्ण होने न होने का कोई मूल्य नहीं रह जाता ।

नारी के हृदय में जो गम्भीर ममता—सजल वीर—भाव उत्पन्न होता है वह पुरुष के उग्र शौर्य से अधिक उदात्त और दिव्य रहता है । पुरुष अपने व्यक्तिगत या समूहगत रागद्वेष के लिए भी वीर धर्म अपना

सकता है और अहंकार की तृप्ति—मात्र के लिए भी। पर नारी अपने सृजन की बाधाएँ दूर करने के लिए या अपनी कल्याणी सृष्टि की रक्षा के लिए ही रुद्र बनती है। अतः उसकी वीरता के समकक्ष रखने योग्य प्रेरणाएँ संसार के कोश में कम हैं। मातृशक्ति का दिव्य रक्षक उद्धारक रूप होने के कारण ही भीमाकृति चंडी, वत्सला अम्बा भी है, जो हिंसात्मक पाशविक शक्तियों को चरणों के नीचे दबाकर अपनी सृष्टि के मंगल की साधना करती है।

सुभद्रा में जो महिमामयी माँ थी, उसकी वीरता का उत्स भी वात्सल्य ही कहा जा सकता है। न उनका जीवन किसी क्षणिक उत्तेजना से संचालित हुआ न उनकी ओज भरी कविता वीर—रस की घिसी—पिटी लीक पर चली। उनके जीवन में जो एक निरन्तर निखरता हुआ कर्म का तारतम्य है वह ऐसी अंतरव्यापिनी निष्ठा से जुड़ा हुआ है जो क्षणिक उत्तेजना का दान नहीं मानी जा सकती। इसी से जहाँ दूसरों को यात्रा का अन्त दिखाई दिया वहीं उन्हें नई मंजिल का बोध हुआ।

थक कर बैठने वाला अपने न चलने की सफाई खोजते—खोजते लक्ष्य पा लेने की कल्पना कर सकता है, पर चलने वाले को इसका अवकाश कहाँ !

जीवन के प्रति ममता भरा विश्वास ही उनके काव्य का प्राण है —
सुख भरे सुनहले बादल
रहते हैं मुझको घेरे।
विश्वास प्रेम साहस हैं
जीवन के साथी मेरे।

मधुमक्षिका जैसे कमल से लेकर भटकटैया तक और रसाल से लेकर आक तक, सब—मधुरतित्ति एकत्र करके उसे अपनी शक्ति से एक मधु बनाकर लौटाती है, बहुत कुछ वैसा ही आदान—सम्प्रदान सुभद्रा जी का था। सभी कोमल—कठिन सद्ग—असद्ग अनुभवों का परिपाक दूसरों के लिए एक ही होता था। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनमें विवेचन की तीक्ष्ण दृष्टि का अभाव था। उनकी कहानियाँ प्रमाणित करती हैं कि उन्होंने जीवन और समाज की अनेक समस्याओं पर विचार किया और कभी अपने निष्कर्ष के साथ और कभी दूसरों के निष्कर्ष के लिए उन्हें बड़े चामत्कारिक ढंग से उपस्थित किया।

जब स्त्री का व्यक्तित्व उसके पति से स्वतंत्र नहीं माना जाता था तब वे कहती हैं, 'मनुष्य की आत्मा स्वतंत्र है। फिर चाहे यह स्त्री—शरीर के अंदर निवास करती हो चाहे पुरुष—शरीर के अंदर। इसी से पुरुष और स्त्री का अपना—अपना व्यक्तित्व अलग रहता है।' जब समाज और परिवार की सत्ता के विरुद्ध कुछ कहना अधर्म माना जाता था तब वे कहती हैं, समाज और परिवार व्यक्ति को बंधन में बाँधकर रखते हैं। ये बंधन देशकालानुसार बदलते रहते हैं और उन्हें बदलते रहना चाहिए वरना वे व्यक्तित्व के विकास में सहायता करने के बदले बाधा पहुँचाने लगते हैं। बंधन कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यों न नियत किए गए हों, हैं बंधन ही, और जहाँ बंधन है वहाँ असंतोष है तथा क्रांति है।'।

परंपरा का पालन ही जब स्त्री का परम कर्तव्य समझा जाता था तब वे उसे तोड़ने की भूमिका बाँधती हैं, 'चिर—प्रचलित रूढ़ियों और चिर—संचित विश्वासों को आघात पहुँचानेवाली हलचलों को हम

देखना—सुनना नहीं चाहते। हम ऐसी हलचलों को अधर्म समझकर उनके प्रति आँख मींच लेना उचित समझते हैं, किंतु ऐसा करने से काम नहीं चलता। यह हलचल और क्रांति हमें बरबस झकझोरती है और बिना होश में लाए नहीं छोड़ती।’

अनेक समस्याओं की ओर उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि सहज भाव से कहीं सरल कहानी का अन्त भी हमें झकझोर डालता है।

वे राजनैतिक जीवन में ही विद्रोहिणी नहीं रहीं, अपने पारिवारिक जीवन में भी उन्होंने अपने विद्रोह को सफलतापूर्वक उतार कर उसे सृजन का रूप दिया था।

सुभद्रा जी के अध्ययन का क्रम असमय ही भंग हो जाने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय की शिक्षा तो नहीं मिल सकी, पर अनुभव की पुस्तक से उन्होंने जो सीखा उसे उनकी प्रतिभा ने सर्वथा निजी विशेषता दे दी है।

भाषा, भाव छंद की दृष्टि से नए, ‘झांसी की रानी’ जैसे वीर—गीत तथा सरल स्पष्टता में मधुर प्रगीत मुक्त, यथार्थ वादिनी मार्मिक कहानियाँ आदि उनकी मौलिक प्रतिभा के ही सृजन हैं।

ऐसी प्रतिभा व्यावहारिक जीवन को अच्छूता छोड़ देती तो आश्चर्य की बात होती।

पत्नी की अनुगामिनी, अधांगिनी आदि विशेषताओं को अस्वीकार कर उन्होंने भाई लक्ष्मणसिंह जी को पत्नी के रूप में ऐसा अभिन्न मित्र दिया जिसकी बुद्धि और शक्ति पर निर्भर रह कर अनुगमन किया जा सके।

अजगर की कुंडली के समान, स्त्री के व्यक्तित्व को कस कर चूर—चूर कर देनेवाले अनेक सामाजिक बंधनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा, उसका मूल्यांकन आज संभव नहीं है।

उस समय बच्चों के लालन—पालन में मनोविज्ञान को इतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला था और प्रायः सभी माता—पिता बच्चों को शिष्टता सिखाने में स्वयं अशिष्टता की सीमा तक पहुंच जाते थे। सुभद्रा जी का कवि—हृदय यह विधान कैसे स्वीकार कर सकता था! अतः उनके बच्चों को विकास का जो मुक्त वातावरण मिला उसे देखकर सब समझदार निराशा से सिर हिलाने लगे। पर जिस प्रकार यह सत्य है कि सुभद्रा जी ने अपने किसी बच्चे को उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ करने के लिए बाध्य नहीं किया, उसी प्रकार यह भी सत्य है कि किसी बच्चे ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिससे उसकी महीयसी मां को किंचित् भी क्षुब्ध होने का कारण मिला हो। उनके वात्सल्य का विधान ही अलिखित और अटूट था।

अपनी संतान के भविष्य को सुखमय बनाने के लिए उनके निकट कोई भी त्याग अकरणीय नहीं रहा। पुत्री के विवाह के विषय में तो उन्हें अपने परिवार से भी संघर्ष करना पड़ा।

उन्होंने एक क्षण के लिए भी इस असत्य को स्वीकार नहीं किया कि जातिवाद की संकीर्ण तुला पर ही वर की योग्यता तोली जा सकती है। इतना ही नहीं, जिस कन्यादान की प्रथा का सब मूक—भाव से पालन करते आ रहे थे उसी के विरुद्ध उन्होंने घोषणा की, ‘मैं कन्यादान नहीं करूँगी। क्या मनुष्य मनुष्य को दान करने का अधिकारी है? क्या विवाह के उपरांत मेरी बेटी मेरी नहीं रहेगी?’ उस समय तक किसी ने, और विशेषतः किसी स्त्री ने ऐसी विचित्र और परम्परा—विरुद्ध बात नहीं कही थी।

देश की जिस स्वतंत्रता के लिए उन्होंने जीवन के वासंती सपने अँगारों पर रख दिए थे, उसकी प्राप्ति के उपरांत भी जब उन्हें सब ओर अभाव और पीड़ा दिखायी दी तब उन्होंने अपने संघर्षकालीन साथियों से भी विद्रोह किया। उनकी उग्रता का अंतिम परिचय तो विश्ववन्द्य बापू की अस्थिविसर्जन के दिन प्राप्त हुआ। वे कई सौ हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ-साथ सात मील पैदल चलकर नर्मदा किनारे पहुँचीं। पर अन्य संपन्न परिवारों की सदस्याएं मोटरों पर ही जा सकीं। जब अस्थिप्रवाह के उपरान्त संयोजित सभा के घेरे में इन पैदल आने वालों को स्थान नहीं दिया गया तब सुभद्रा जी का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। उनका क्षात्रधर्म तो किसी प्रकार के अन्याय के प्रति क्षमाशील हो नहीं सकता था। जब उन हरिजनों को उनका प्राप्य दिला सकीं तभी वे स्वयं सभा में सम्मिलित हुईं।

सातवीं और पाँचवीं कक्षा की विद्यार्थिनियों के सख्य को सुभद्रा जी के सरल स्नेह ने ऐसी अमिट लक्ष्मण-रेखा से घेर कर सुरक्षित रखा कि समय उस पर कोई रेखा नहीं खींच सका। अपने भाई-बहिनों में सबसे बड़ी होने के कारण मैं अनायास ही सबकी देख-रेख और चिंता की अधिकारिणी बन गई थी। परिवार में जो मुझसे बड़े थे उन्होंने भी मुझे ब्रह्मसूत्र की मोटी पोथी में आँख गड़ाए देखकर अपनी चिंता की परिधि से बाहर समझ लिया था। पर केवल सुभद्रा पर न मेरी मोटी पोथियों का प्रभाव पड़ा न मेरी समझदारी का। अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों में हम कभी कुतूहली बाल-भाव से मुक्त नहीं हो सके। सुभद्रा के मेरे घर आने पर भक्तिन तक मुझ पर रौब जमाने लगती थी। क्लास में पहुँच कर वह उनके आगमन की सूचना इतने ऊँचे स्वर में इस प्रकार देती कि मेरी स्थिति ही विचित्र हो जाती 'ऊ सहोदरा विचरिअऊ तो इनका देखे बरे आइ के अकेली सूने घर माँ बैठी हैं। अउर इनका कितबियन से फुरसत नाहिन बा'। एम.ए., बी.ए के विद्यार्थियों के सामने जब एक देहातिन बुढिया गुरु पर कर्तव्य-उल्लंघन का ऐसा आरोप लगाने लगे तो बेचारे गुरु की सारी प्रतिष्ठा किरकिरी हो सकती थी। पर इस अनाचार को रोकने का कोई उपाय नहीं था। सुभद्रा जी के सामने न भक्तिन को डांटना संभव था न उसके कथन की उपेक्षा करना। बंगले में आकर देखती कि सुभद्रा जी रसोई घर में या बरामदे में भानुमती का पिटारा खोले बैठी हैं और उसमें से अद्भुत वस्तुएं निकल रही हैं छोटी-छोटी पत्थर या शीशे की प्यालियाँ, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला-बेलन, चुटीली, नीली-सुनहली चूडियाँ आदि-आदि सब कुछ मेरे लिए आया है, इस पर कौन विश्वास करेगा ! पर वह आत्मीय उपहार मेरे निमित्त ही आता था।

ऐसे भी अवसर आ जाते थे जब वे किसी कवि-सम्मेलन में आते-जाते प्रयाग उतर नहीं पाती थीं और मुझे स्टेशन जाकर ही उनसे मिलना पड़ता था। ऐसी कुछ क्षणों की भेंट में भी एक दृश्य की अनेक आवृत्तियाँ होती ही रहती थीं। वे अपने थैले से दो चमकीली चूडियाँ निकालकर हँसती हुई पूछतीं, 'पसंद हैं? मैंने दो तुम्हारे लिए, दो अपने लिए खरीदी थीं। तुम पहनने में तोड़ डालोगी। लाओ अपना हाथ, मैं पहना देती हूँ।' पहन लेने पर वे बच्चों के समान प्रसन्न हो उठतीं।

हम दोनों जब साथ रहती थीं तब बात में एक मिनट और हँसी में पाँच मिनट का अनुपात रहता था। इसी से प्रायः किसी सभा-समिति में जाने के पहले न हँसने का निश्चय करना पड़ता था। एक दूसरे की ओर बिना देखे गंभीर भाव से बैठे रहने की प्रतिज्ञा करके भी वहाँ पहुँचते ही एक-न-एक वस्तु या दृश्य सुभद्रा के कुतूहली मन को आकर्षित कर लेता और मुझे दिखाने के लिए वे चिकोटी तक काटने से नहीं

चूकतीं। तब हमारी शोभा—सदस्यता की जो स्थिति हो जाती थी, उसका अनुमान सहज है।

अनेक कवि—सम्मेलनों में हमने साथ भाग लिया था, पर जिस दिन मैंने अपने न जाने का निश्चय और उसका औचित्य उन्हें बता दिया उस दिन से अन्त तक कभी उन्होंने मेरे निश्चय के विरुद्ध कोई आग्रह नहीं किया। आर्थिक स्थितियाँ उन्हें ऐसे निमंत्रण स्वीकार करने के लिए विवश कर देती थीं, परंतु मेरा प्रश्न उठते ही वे कह देती थीं, 'मैं तो विवशता से जाती हूँ, पर महादेवी नहीं जाएगी, नहीं जाएगी।'

साहित्य—जगत में आज जिस सीमा तक व्यक्तिगत स्पर्द्धा ईर्ष्या—द्वेष है, उस सीमा में तब नहीं था, यह सत्य है। पर एक दूसरे के साहित्य—चरित्र—स्वभाव सम्बन्धी निंदा—पुराण तो सब युगों में नानी की कथा के समान लोकप्रियता पा लेता है। अपने किसी भी परिचित—अपरिचित साहित्य—साथी की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु रहना और उसके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना सुभद्रा जी की निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असंभव थी।

वसंत पंचमी को पुष्पाभरणा, आलोकवसना धरती की छवि आँखों में भरकर सुभद्रा ने विदा ली। उनके लिए किसी अन्य विदा की कल्पना ही कठिन थी।

एक बार बात करते—करते मृत्यु की चर्चा चल पड़ी थी। मैंने कहा, 'मुझे तो उस लहर की—सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूर तक आकर चुपचाप समुद्र में लौट कर समुद्र बन जाती है।' सुभद्रा बोली, 'मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूँ, मेरी एक समाधि हो, जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहें, स्त्रियाँ गाती रहें और कोलाहल होता रहे। अब बताओ तुम्हारी नामधाम रहित लहर से यह आनन्द अच्छा है या नहीं।'

उस दिन जब उनके पार्थिव अवशेष को त्रिवेणी ने अपने श्यामल—उज्ज्वल अंचल में समेट लिया तब नीलम—फलक पर श्वेत चन्दन से बने उस चित्र की रेखाओं में बहुत वर्षों पहले देखा एक किशोर—मुख मुस्कराता जान पड़ा।

'यहीं कहीं पर बिखर गई वह छिन्न विजय माला सी !'

शब्दार्थ

वार्धक्य — बुढ़ापा	अनाहूत —बुलाया न गया हो, अनामंत्रित
अतीत — बीता हुआ समय	उत्स —झरना, जल का स्रोत
कोटि — श्रेणी	मधुमक्षिका —मधुमक्खी
अन्वेषिका —खोजने वाली	रसाल — आम
कटु—तिक्त —कड़वा—तीखा	परिपाक —अच्छी तरह पका हुआ
उत्फुल्ल —खिला हुआ, विकसित	गुब्ब — क्रुद्ध, चिन्तित
दीप्ति — चमक	पार्थिव —पृथ्वी सम्बन्धी, मिट्टी आदि से निर्मित
देहयष्टि — शारीरिक गठन, कद काठी	सन्नद्ध — बैधा हुआ, आमादा

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. उस युग में कविता रचना माना जाता था –
(अ) अपराध (ब) साहस
(स) श्रेष्ठ (द) शान्ति ()
2. जहाँ बंधन है वहाँ –
(अ) सहयोग है (ब) असंतोष और क्रान्ति है
(स) विद्रोह है (द) निराशा है ()
3. सुभद्रा ने अन्तिम विदा किस दिन ली—
(अ) नागपंचमी को (ब) पूर्णिमा को
(स) वसंत पंचमी को (द) अमावस्या को ()

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. दोनों बाल सखियाँ किन कक्षाओं में पढ़ती थीं?
2. सुभद्रा के पति का क्या नाम था?
3. नारी रुद्र कब बनती है?
4. सुभद्रा जी के काव्य का प्राण क्या था?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. “क्या तुम कविता लिखती हो” का दूसरी ने क्या उत्तर दिया?
2. लेखिका ने सुभद्रा के व्यक्तित्व का कैसा चित्र प्रस्तुत किया है?
3. “सुभद्रा जी की हंसी संक्रामक भी कम न थी” से क्या तात्पर्य है?
4. “घर आने पर उनकी दशा द्रोणाचार्य जैसी हो जाती थी।” का क्या अभिप्राय है?
5. सुभद्रा जी की तुलना मधुमक्षिका से क्यों की है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. “सुभद्रा ऐसी ही गृहणी थीं” के आधार पर उनके गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों पर प्रकाश डालिए?
2. “वे राजनैतिक जीवन में ही नहीं पारिवारिक जीवन में भी विद्रोहिणी थीं” के आधार पर सुभद्रा के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए ?
3. सुभद्रा जी का महादेवी के प्रति अपार स्नेह अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए ?
4. “उनके वात्सल्य का विधान ही अलिखित और अटूट था” के आधार पर अपने बच्चों के प्रति सुभद्रा जी के निभाये दायित्वों को समझाईये